JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

हिमाचली लोक संगीत में सांगीतिक तत्व-एक अध्ययन

डॉ0 राजेन्द्र सिंह तोमर
सहायक प्राध्यापक - संगीत गायन
राजकीय महाविद्यालय हरिपुरधार
सिरमौर हिमाचल प्रदेश

सारांश

पर्वतराज हिमालय के आंचल में स्थित यह प्रदेश 'हिमाचल' के नाम से भारतवर्ष तो क्या समूचे विश्व भर में अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए विख्यात है। हिमाचल को ऋषि मुनियों की तपस्थली भी माना जाता है। प्रदेश में स्थिति अनेक धार्मिक स्थल, ऐतिहासिक मन्दिर व अन्य देव स्थान हिमाचल प्रदेश के 'देवभूमि' नाम को सार्थक करते हैं। हिमाचली जनमानस में लोकानुरंजन के विविध व्यवहारिक रूप दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें लोक गीत, लोक नृत्य, लोक नाट्य व लोक वाद्य मनोरंजन के प्रमुख साधन हैं। हिमाचली लोक प्राचीन समय से ही कला एवं संगीतप्रिय रहा है। यहां लोक संगीत के अन्तर्गत लोक गीतों, लोक-नृत्यों, लोक-नाट्यों तथा इनमें व्यवहारित लोक वाद्यों का प्रदर्शन मेलों, त्यौहारों तथा अनेक शुभ-अवसरों पर देखने को मिलता है जिसमें हिमाचली लोक संस्कृति का जीवन्त रूप प्रदर्शित होता है। हिमाचली लोक संगीत का सांगीतिक पक्ष अत्यन्त विशद है। यहां लोक संगीत में सांगीतिक तत्व स्वभाविक रूप में विद्यमान हैं, जिनमें स्वर, लय, ताल, रस-भाव तथा नर्तन प्रमुख रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। हिमाचली लोक संगीत का नाद सम्बन्धी गुण, स्वर व्यवस्था, लय एवं ताल व्यवस्था, आलाप पक्ष, स्वर सम्वाद तथा राग छाया आदि लक्षण हिमाचली लोक संगीत में रंजकता तथा रस-सौन्दर्य की निष्पत्ति करने में सहायक हैं।

सूचक शब्द- लोकानुरंजन, आलाप पक्ष, स्वर सम्वाद, रंजकता, रस-भाव, रस-सौन्दर्य।

भूमिका-

हिमाचली लोक संगीत का सांगीतिक पक्ष अत्यन्त विशद एवं व्यापक है। हिमाचली लोक संगीत में सांगीतिक तत्वों तथा लक्षणों का होना एक स्वाभाविक गुण है। संगीत जगत ने आज जो कुछ भी अर्जित किया है उसके निर्माण की परिकल्पना का सर्वाधिक श्रेय लोक संगीत को ही जाता है। यहां लोक संगीत के अन्तर्गत स्वर, लय, ताल, रस, भाव तथा नर्तन आदि गुण प्राकृतिक एवं स्वाभाविक रूप में विद्यमान हैं। हिमाचली लोक संगीत में सांगीतिक तत्वों तथा लक्षणों का विस्तृत भण्डार दृष्टिगोचर होता है। हिमाचली लोक-संगीत के

विविध पक्ष विभिन्न स्थान व जनपदों में अपनी अलग विशेषता लिए हुए हैं। लोक-संगीत में स्थानीय परम्परा, जनरूचि, जनस्वभाव व आचार-विचार समाहित रहता है। लोक-संगीत समाज के विभिन्न वर्गों व जन-समुदाय के दैनंदिन क्रिया-कलापों तथा हर्ष-विवाद का सजीव चित्रण करता है। लोक-साहित्य व जन-साधारण के उद्गारों की सबसे महत्त्वपूर्ण, समृद्ध एवं सशक्त अभिव्यक्ति लोक-संगीत के माध्यम से सम्भव है। लोक-संगीत के अन्तर्गत हिमाचली लोक-संगीत में लोक-गीत, लोक-नृत्य, लोक-नाट्य, लोक-वाद्य व लोक-ताल का अत्यन्त सुन्दर सम्मिश्रण है।

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न जनपदों में विविध प्रकार के लोक-गीत प्रचलित हैं, जिनमें देवी-देवताओं की स्तुति, संयोग-वियोग, वीर-गाथाओं, राजाओं की प्रेम-गाथाओं व उनके कार्य-कलापों तथा हर्ष-वेदनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। यह लोक-गीत स्थानीय बोलियों में सुनने को मिलते हैं। लोक-नृत्य में लोक-गीतों के साथ विविध वाद्य- बांसुरी, शहनाई, ढोल, करनाल, डमरू, खंजरी आदि के सहचर्य के साथ नृत्य करके जन-साधारण का मनोरंजन किया जाता है।

हिमाचली लोक-नाट्यों में करियाला या करियाड़ा, भगत, बांठड़ा, स्वांग, बुढड़ा, धाजा, हरण या हरणात्तर आदि प्रसिद्ध एवम् लोकप्रिय है। हिमाचली लोक वाद्यों के अन्तर्गत- तत, सुषिर,घन व अवनद्ध समस्त प्रकार के लोक-वाद्यों का प्रचलन देखने को मिलता है। इन पारम्परिक लोक वाद्यों में- ढोल, नगारा, दमामटू, डफली, हुड़क, ढाकुली, डफली, धौंसा, बांसुरी, शहनाई, रणसिंगा, करनाल, अलगोजू, झांझ, मंजीरा, किंदरी, एकतारा, रबाब, सारंगी आदि का प्रचलन दृष्टव्य है।

हिमाचली लोक संगीत का सांगीतिक तत्वों के आधार पर विश्लेषण प्रस्तुत हैः-

नाद सम्बन्धी गुणः

संगीत का मूल आधार ध्वनि है। ध्वनि का सम्बन्ध श्रवण से है तथा ध्वनि को व्यक्त करने का माध्यम अत्यन्त सूक्ष्म है। ध्वनि जब नियमित तथा निश्चित आन्दोलनों के माध्यम से व्यक्त होती है तब यह मधुर एवं रंजक बन जाती है। यही रंजक एवं मधुर संगीतोपयोगी ध्वनि अपने नियमित एवं निश्चित आन्दोलनों के फलस्वरूप 'नाद' कही गई। वैज्ञानिक अन्वेषणों से प्रमाणित किया जा चुका है कि नाद के गुण, जाति व धर्म पर किसी स्थान विशेष की भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु का व्यापक प्रभाव पड़ता है। हिमाचल एक पहाड़ी प्रदेश होने की वजह से यहां अधिकांश भागों में सर्दी का साम्राज्य रहता है। यहां की सर्द जलवायु के परिणामस्वरूप लोगों में नाद के गुण स्वाभाविक रूप में विद्यमान हैं। स्थानीय लोगों के कण्ठ सुरीले एवं सुमधुर हैं। यहां स्त्रियों तथा पुरूषों की आवाज़ मे लोक-गीतों को गाते हुए एक विशेष 'लामण', 'झूरी', 'लोका', 'बालो' आदि ऊँचे स्वरों तथा लम्बी लय में गाए जाते हैं, जिनमें तार-सप्तक के स्वरों में गायन करना एक प्रभावशाली गुण है। 'नाटी' गीतों में भी विभिन्न प्रकार के स्वरों की रंजकता, गाम्भीर्य एवं मधुरता स्वाभाविक रूप में विद्यमान है। स्वास्थ्यवर्धक जलवायु होने के फलस्वरूप लोक गायकों के कण्ठ रोग मुक्त हैं, फलतः लोक गायकों की आवाज़ में रंजकता, माधुर्य, गम्भीरता, लोच तथ ठहराव है। लोक गीतों के गायन में ऊँचे स्वरों को

सुगमता तथा ठहराव स्वरूप लगाना हिमाचली लोक कलाकारों का नैसर्गिक गुण है जिसमें हिमाचली लोक संगीत चमत्कृत रहता है।

स्वर-व्यवस्थाः

हिमाचली लोक संगीत के अन्तर्गत व्यवहारित लोकगीतों में स्वर-सम्बन्धी निम्न विशेषताएं दृष्टव्य हैं-

(1) प्राचीन संगीत में सप्तक के विकास से पूर्व गायन तथा वादन मुख्यतः तीन स्वरों- उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित में किया जाता था। हिमाचली लोक संगीत में आज भी ऐसे लोकगीतों की स्वरावलियों का प्रचलन दृष्टिगोचर होता है जो मुख्यतः तीन या चार स्वरों से निर्मित है। उदाहरएण स्वरूप 'लोहड़ी गीत' की स्वरलिपि प्रस्तुत है, जिसमें चार स्वरों का ही प्रयोग हुआ है-

स्वरलिपि -

-	-ग	गरे	रेग	सा	-रे	सा	ध़	सा	-	सा	-
ऽ	ऽहो	भाऽ	भीगे	लो	ऽह	ड़ी	ऽ	आ	ऽ	ई	ऽ
सा	रेरे	सा-	ध़	सा-	सा-	ग-	रेग	सा	-रे	सा	ध़
क्या	हेऽ	क्या	हे	ल्या	ईओ	भाऽ	भीगे	लो	ऽह	ड़ी	ऽ

(2) हिमाचली लोकगीतों में विविध स्वर-अन्तराल प्रयुक्त हुए हैं। लामण, गंगी, झूरी, साका, लोका, बामणा रा छोरू आदि लोकगीतों में स्वर-अन्तराल लम्बा पाया जाता है तथा सामान्य लोकगीतों में स्वरान्तराल कम पाए जाते हैं। मुख्यतः गम्भीर प्रकृति के लोकगीतों में स्वर-अन्तराल लम्बा तथा चंचल प्रकृति के लोकगीतों में छोटे-छोटे स्वर-अन्तरालों का व्यवहार दृष्टव्य है। स्थानीय बोली में लम्बे अन्तराल के स्वरों को 'खड़े स्वर' की संज्ञा दी गई है।

(3) हिमाचली लोकगीतों में 'आधार स्वर' अर्थात 'षड़ज स्वर' की स्थिरता शास्त्रीय संगीत के रूप प्रयुक्त नहीं होता है। लोक गायक अपनी मनोदशा तथा ईच्छानुसार किसी भी स्वर को आधार मानकर गायन करते हैं। लोक गायक अलग-अलग लोकगीतों को अलग-अलग 'स्केलों' में गाते हैं। लोक गायकों के गायन में मुख्य विशेषता यह रहती है कि गीत का आधार स्वर या स्केल चाहे कुछ भी हो परन्तु गीत की स्वरलिपि में परिवर्तन नहीं आता है। लोक गीत की धुन, जिसे स्थानीय बोली में 'भाष' या 'भाख' कहा जाता है, सदैव एक जैसी ही रहती है तथा गीत का भाव भी बना रहता है।

(4) हिमाचली लोक संगीत में मुख्यतः पहाड़ी, दुर्गा, भूपाली, शिवरंजनी, तिलक कामोद देस, झिंझोटी, खमाज, पीलू, सारंग, बिलावल, भीमपलासी, मेघ, जय-जयवन्ती आदि रागों पर आधारित लोकगीतों का प्रचलन देखने को मिलता है, जिनमें तीन स्वरों से लेकर सात स्वरों का प्रयोग किया जाता है। अधिकांश लोकगीतों में शुद्ध-स्वरों के अतिरिक्त विकृत स्वरों का भी प्रयोग मिलता है।

(5) हिमाचली लोकगीतों में प्रयुक्त स्वरों में आरोही-अवरोही क्रम अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट है। स्वरों के उतार-चढाव में स्पष्टता, ज़ोरदार एवं ऊँची आवाज में स्वर-लगाव ही हिमाचली लोक संगीत की रोचकता एवं लोकप्रियता की प्रमुख विशेषता है।

(6) हिमाचली लोकगीतों में स्वरों का व्यवहार भावानुरूप पाया जाता है। लोकगीत जिस प्रसंग एवं घटनाक्रम से सम्बद्ध होता है, उसका स्वरभाव भी उसी के अनुरूप ढल जाता है। फलतः इस प्रकार के लोकगीतों तथा स्वर-रचनाओं में भावाभिव्यक्ति एवं रस-निष्पति सहज एवं स्वाभाविक हो जाती है।

(7) हिमाचली लोकगीतों की अधिकांश धुनों में कम स्वरों का प्रयोग मिलता है, परन्तु इन लोकधुनों में एक विशेष प्रकार की मधुरता, रंजकता एवं लोच रहती है जो गायक एवं श्रोता दोनों को आनन्दित करती है। लोक गायक कई बार गायन करते समय स्वर-लगाव के कुछ सूक्ष्म एवं अनायास प्रयोग कर जाते हैं जो अत्यन्त आकर्षक एवं मधुरता का आभास करवाते हैं।

(8) हिमाचली लोकगीतों में खटका, मुर्की, मींड़ आदि का भी विशिष्ट प्रयोग रहता है जो हिमाचली लोक संगीत की सुन्दरता एवं कलात्मकता का परिचायक है। यह सब क्रियाएं लोक गायकों के कंठ से अनायास ही निकलती हैं जो अत्यन्त मधुर तथा गायन को प्रभावपूर्ण बनाती है।

लय एवं ताल व्यवस्थाः

हिमाचली लोक संगीत लय-प्रधान संगीत है। लय हिमाचली लोक संगीत का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण गुण है। लय के फलस्वरूप लोकगीत जन-मानस के मन-मस्तिष्क पर अपनी अमिट छाप छोड़ देते हैं, जिससे सामान्य लोग भी उसे सरलता से कण्ठस्थ एवं आत्मसात कर लेते हैं। लय ताल का आधार माना गया है। वास्तव में लय व ताल के बिना संगीत का अस्तित्व सम्भव ही नहीं है। लोक संगीत में लय व ताल का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

लय एवं ताल हिमाचली लोक संगीत के प्रत्येक पहलुओं से सम्पृक्त है। हिमाचली लोक संगीत के अन्तर्गत लोक गीतों, नृत्यों तथा नाट्यों के साथ विभिन्न तालों का व्यवहार दृष्टिगोचर होता है। लोक वादकों द्वारा लोक-वाद्यों पर देव-पूजन, संस्कारों, सामूहिक उत्सवों, मेलों, त्यौहारों आदि अवसरों पर बजाई जाने वाली विविध तालों का व्यवहार दृष्टिगोचर होता है। हिमाचली लोक-संगीत में प्रयुक्त की जाने वाली लोक तालों का उद्भव एवं प्रचार-प्रसार मंगलामुखियों द्वारा हुआ माना जाता है, जिन्हें स्थानीय भाषा एवं बोली में तूरी, हेसी, बाजगी, बजन्तरी आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है

हिमाचली लोक-संगीत में प्रयुक्त ताल प्रायः छह, सात, आठ, दस, चौदह एवं सोलह मात्रिक है। हिमाचली लोक संगीत में मुख्यतः दादरा, कहरवा, रूपक, तीनताल, खेमटा, दीपचंदी आदि तालों के समरूप लोक तालों का प्रयोग होता है, जिन्हें स्थानीय नामों से सम्बोधित किया जाता है। लोक तालों में शास्त्रोक्त तालों के अनुरूप 'खाली' तथा 'भरी' आदि स्थानों का कोई विशेष महत्व दृष्टिगोचर नहीं होता है। हिमाचली लोक गीतों में स्वर की प्रधानता के साथ-साथ ताल का भी भावाभिव्यक्ति तथा रस-निष्पत्ति में विशिष्ट स्थान रहता है।

हिमाचली लोक संगीत के अन्तर्गत ढोल, नगाड़ा आदि वाद्यों पर लय एवं सरल लोक तालों का वादन किया जाता है तथा लोक वाद्यों पर शास्त्रीय संगीत के समरूप ढोल निकाले जाते हैं। यहां लोक तालों में लय के तीनों रूप बिलम्बित, मध्य तथा द्रुत, गायन शैलियों के अनुरूप ही वादन क्रिया के अन्तर्गत व्यवहारित है।

ढोल वाद्य पर दाएं हाथ से छड़ी द्वारा प्रहार करने से उत्पन्न बोल- तां, ना, ताणी, तांनण, तिर, तक, तृक, तृग, किनणतां आदि।

बाएं हाथ के प्रहार से उत्पन्न बोल- धे, गे, ग, ध, गिदि, गिधि, घेघे, धेगे, किड़, कड़, आदि।

संयुक्त बोल- झां, तिरकिड़, तकधिना, तागे, धिण, कड़ान, धिड़ान, किड़ान, धिनड़, क्रिड़झां, झागेतां, तड़ान आदि। नगाड़ा वाद्य पर भी ढोल वाद्य के समान ही बोलों को निकाला जाता है, जो लय व ताल के निर्माण में सहायक हैं।

आलाप पक्षः

हिमाचली लोक संगीत के अधिकांश लोक गीतों में कला पक्ष की अपेक्षा भाव पक्ष की प्रबलता देखने को मिलती है। समग्रतः देखा जाए तो हिमाचली लोक संगीत गम्भीर एवं हृदय के तारों को झंकृत करने वाला लोक संगीत है। हिमाचली लोकसंगीत के अधिकतर लोकगीतों के गायन में ऐसा आभास होता है जैसे शास्त्रीय संगीत के अनुरूप मध्यलय में आलाप किया जा रहा हो। हिमाचली लोक गीतों को पारम्परिक रूप से बिछाकर गाया जाता है जिससे इनका भाव पक्ष उभर कर अत्यधिक रंजकता प्रदान करता है। झूरी, गंगी, बालो, लामण, बामणा रा छोरू आदि लोक गीत इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, जिनके गाने का ढंग ऐसा है जैसे आलापचारी के द्वारा किसी गीत की भावाभिव्यक्ति में एक निश्चित सार्थकता का क्रम विद्यमान रहता है। आलापचारी के इस सुन्दर समन्वय के फलस्वरूप लोकगीतों के स्वरों में रस-माधुर्य तथा लोच दृष्टव्य है।

स्वर-सम्वादः

संगीत जगत में सम्वाद-भाव को विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। संगीत अपने सूक्ष्म एवं स्थूल रूप में सम्वाद भाव पर आधारित है। संगीत में स्वरों के परस्पर सम्वाद भाव को ही रंजकता एवं मधुरता का आधार माना गया है। हिमाचली लोक संगीत में भी परस्पर स्वर-सम्वाद भाव दृष्टिगोचर होता है। यहां लोक संगीत के अन्तर्गत मुख्यतः 'षड़ज-मध्यम' तथा 'षड़ज-पंचम' स्वर सम्वाद पाया जाता है। लोक गीतों की स्वरलिपि का अवलोकन किया जाए तो 'षड़ज-मध्यम' स्वर-सम्वाद भाव के अन्तर्गत 'सा-म, रे-प, म-नि तथा प-सां' स्वर-संगतियां प्रच्छन्न रूप में विद्यमान रहती हैं। यहां लोकगीतों की विविध शैलियां पहाड़ी, दुर्गा, सारंग, पीलू, भीमपलासी, मालगुंजी आदि रागों पर आधारित हैं जिनमें 'मध्यम स्वर' की प्रबलता स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है, उदाहरणतया-नाटी, छिंज, बालो, झूरी, गंगी आदि। 'षड़ज-पंचम' स्वर सम्वाद बहुत कम लोक गीतों में पाया जाता है। कुछ लोक गीतों में 'षड़ज-गंधार' स्वर सम्वाद देखने को मिलता है। लोकगीतों में आदि से लेकर अन्त तक स्वर-सम्वाद भाव से रस-माधुर्य का संचार बना रहता है।

हिमाचली लोक संगीत का सर्वाधिक प्रचलित सुषिर लोक वाद्य 'करनाल' सामान्यतः 'सा-ग, सा-म, सा-प' संवादिक स्वरों पर बजता प्रतीत होता है। इस प्रकार हिमाचल लोक संगीत में स्वर-सम्वाद भाव लोक गीतों में रंजकता तथा रस-माधुर्य की निष्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

राग छायाः

अधिकांश संगीत शास्त्रियों तथा संगीत मर्मज्ञों का मानना है कि लोक संगीत से ही शास्त्रीय संगीत की व्युत्पत्ति हुई है। लोक संगीत से शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति के सन्दर्भ में कुछ विद्वानों में मतभेद पाए जाते हैं परन्तु अधिकतर संगीतज्ञ इस बात से सहमत है कि लोक-संगीत भले ही शास्त्रीय संगीत का जन्मदाता न हो पर लोक संगीत-सरिता ने शास्त्रीय संगीत को संगीत के मूलभूत तत्वों को प्रदान करके संगीत-सागर के अस्तित्व में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, जो अमूल्य है।

पं0 ओंकार नाथ ठाकुर जी के विचारानुसार-"देशी संगीत के विकास की पृष्ठभूमि लोक संगीत ही है। किसी भी देश या जाति का सहृदय एवं भावुक मनुष्य जब अपने उद्गारों की अभिव्यक्ति करने के लिए उन्मुख हुआ, उस अवसर पर स्वयंभू स्वर तथा लय स्वभावतः उसके मुख से उद्भूत हुए और उन्हीं स्वर, लय तथा गीत को नियमबद्ध करके उनका जो शास्त्रीय विकास किया गया, वह देशी संगीत कहलाया। मेरा मानना है कि आज अगर इस सन्दर्भ में शोध किया जाए तो प्रचलित रागों का उत्पादक एवं मूल-स्त्रोत 'लोक-संगीत' ही सिद्ध होगा।"1

उक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि शास्त्रीय संगीत लोक संगीत से ही उत्पन्न एवं कालान्तर में विकसित होता आया है। लोक संगीत ने सदैव शास्त्रीय संगीत को अपना विशिष्ट योगदान देकर तथा उसका प्रशस्त कर विकास के पथ पर अग्रसर किया है।

हिमाचली लोक संगीत के अन्तर्गत व्यवहारित लोक गीत अत्यन्त सहज, सरल, स्वाभाविक, अनुभूतिमय तथा मनोरंजक है। हिमाचली लोक संगीत के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यहां के लोक गीतों में जो रंजक तत्व विराजमान हैं, उसका मूल कारण उनका कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी राग,ताल, रस तथा भाव से सम्पृक्त होना है । अधिकतर लोक गीतों में राग-स्वरूप या सांगीतिक तत्वों का पाया जाना हिमाचली लोक संगीत की महत्वपूर्ण विशेषता है ।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. पं0 ओंकार नाथ ठाकुर- (संगीत पत्रिका) लोक संगीत अंक, जन0 1966, पृ0 27 ।
2. डॉ0 राजेन्द्र तोमर-हिमाचली लोक संगीत में प्रयुक्त सांगीतिक शब्दावली का अध्ययन ।
3. मोहन राठौर-हिमाचल प्रदेश का लोक संगीत, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला ।